International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

भारत में सहकारी आंदोलन का वैश्वीकरण: अवसर, चुनौतियाँ और राजनीतिक प्रभाव

[1] Sachin Tamrakar, [2]Dr. Prakash G Hambarde

[1]Research Scholar, Department of Political Science, Malwanchal University, Indore

[2]Supervisor, Department of Political Science, Malwanchal University, Indore

संक्षेप

भारत में सहकारी आंदोलन (Cooperative Movement) का इतिहास स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ा हुआ है, जब इसे आर्थिक स्वावलंबन और सामाजिक समानता प्राप्त करने के प्रभावी साधन के रूप में देखा गया। सहकारी समितियाँ मूल रूप से किसानों, मजदूरों और कमजोर वर्गों के लिए एक ऐसा मंच थीं, जहाँ सामूहिक प्रयासों से पूँजी, संसाधन और श्रम का समन्वय करके आर्थिक सुरक्षा और सामाजिक न्याय सुनिश्चित किया जा सके। समय के साथ, सहकारी आंदोलन ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था, कृषि उत्पादन, बैंकिंग, डेयरी, लघु उद्योग और उपभोक्ता सेवाओं में उल्लेखनीय योगदान दिया। विशेष रूप से "अमूल" जैसे सहकारी मॉडल ने न केवल ग्रामीण विकास को गति दी बल्कि भारत को वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाई। उदारीकरण (1991 के बाद) और वैश्वीकरण की लहर ने इस आंदोलन के स्वरूप और कार्यप्रणाली को गहराई से प्रभावित किया। अंतरराष्ट्रीय बाजारों से प्रतिस्पर्धा, पूँजी का प्रवाह, तकनीकी हस्तांतरण और बहुराष्ट्रीय कंपनियों की उपस्थिति ने सहकारी समितियों के सामने नई चुनौतियाँ और अवसर दोनों प्रस्तुत किए।

वैश्वीकरण के संदर्भ में सहकारी आंदोलन केवल आर्थिक दृष्टिकोण से ही नहीं, बल्कि राजनीतिक परिदृश्य में भी गहरे प्रभाव डालता है। सहकारी समितियाँ अब केवल स्थानीय स्व-प्रबंधन तक सीमित नहीं हैं, बल्कि राष्ट्रीय नीतियों और वैश्विक आर्थिक व्यवस्थाओं से जुड़ गई हैं। राजनीतिक दल सहकारी समितियों को ग्रामीण वोट-बैंक और नेतृत्व तैयार करने के मंच के रूप में देखते हैं। यही कारण है कि सहकारिता मंत्रालय की नीतियों, सहकारी बैंकों के प्रबंधन, और डेयरी एवं कृषि आधारित सहकारी संस्थाओं पर राजनीतिक हस्तक्षेप लगातार बढ़ा है। वैश्वीकरण ने सहकारिता क्षेत्र को दक्षता, पारदर्शिता और प्रतिस्पर्धात्मकता अपनाने पर मजबूर किया है, लेकिन साथ ही राजनीतिकरण और आर्थिक उदारीकरण के दबाव ने इसकी स्वायत्तता और मूल उद्देश्यों को कई बार चुनौती दी है। इस प्रकार, भारत में सहकारी

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

आंदोलन का वैश्वीकरण न केवल विकास का नया मार्ग प्रशस्त करता है, बल्कि राजनीतिक समीकरणों और लोकतांत्रिक संरचना पर गहरे प्रभाव भी छोड़ता है।

सूचक शब्द:- सहकारी आंदोलन, वैश्वीकरण, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, राजनीतिक प्रभाव, आर्थिक उदारीकरण

सहकारी आंदोलन का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

भारत में सहकारी आंदोलन का उद्भव उपनिवेशकालीन परिस्थितियों से जुड़ा हुआ है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में जब भारतीय कृषक वर्ग कर्ज, सूदखोरी और शोषण की चपेट में था, तब सहकारिता की अवधारणा को सामाजिक-आर्थिक मुक्ति का एक विकल्प माना गया। 1904 में "सहकारी ऋण समितियों अधिनियम" (Cooperative Credit Societies Act) पारित किया गया, जिसने भारत में सहकारी समितियों के औपचारिक गठन की नींव रखी। इसका उद्देश्य किसानों और ग्रामीण गरीबों को उच्च ब्याज दरों से बचाना और सामूहिक सहयोग के आधार पर ऋण उपलब्ध कराना था। इसके बाद 1912 का अधिनियम आया, जिसने गैर-ऋण सहकारी समितियों के गठन का मार्ग प्रशस्त किया।

स्वतंत्रता आंदोलन के समय महात्मा गांधी और अन्य नेताओं ने स्वावलंबन और ग्राम-स्वराज की अवधारणा को सहकारिता से जोड़कर देखा। गांधीजी का मानना था कि सहकारी समितियाँ ग्रामीण आत्मनिर्भरता और आर्थिक समानता का आधार बन सकती हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संविधान के अनुच्छेद 43B और नीति-निदेशक तत्वों में सहकारिता को विशेष स्थान दिया गया। 1950 और 1960 के दशकों में सहकारी समितियों ने कृषि उत्पादन, खाद्यान्न वितरण, डेयरी उद्योग और ग्रामीण बैंकिंग में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। "श्वेत क्रांति" (White Revolution) का नेतृत्व भी सहकारी आंदोलन, विशेषकर अमूल मॉडल, ने किया। समय के साथ सहकारी आंदोलन केवल ग्रामीण विकास तक सीमित नहीं रहा, बल्कि शहरी उपभोक्ता समितियों, आवास, चीनी मिलों, बैंकिंग और उद्योगों में भी इसका विस्तार हुआ। किंतु इसके विकास के साथ-साथ चुनौतियाँ भी सामने आईं—जैसे राजनीतिक हस्तक्षेप, भ्रष्टाचार, असमान प्रबंधन और संगठनात्मक लोकतंत्र का ह्रास। इसके बावजूद सहकारी आंदोलन ने भारत की सामाजिक-आर्थिक संरचना को एक नई दिशा दी और यह लोकतांत्रिक सहभागिता का एक सशक्त माध्यम बना।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

भारत में सहकारिता की सामाजिक-आर्थिक भूमिका

भारत जैसे विशाल और बहुस्तरीय समाज में सहकारिता की भूमिका केवल आर्थिक नहीं बल्कि सामाजिक भी रही है। सहकारी समितियाँ सामूहिक प्रयास के सिद्धांत पर आधारित होती हैं—"सभी के लिए एक और एक के लिए सभी।" इसने समाज के कमजोर, वंचित और हाशिये पर खड़े वर्गों को मुख्यधारा से जोड़ने का कार्य किया। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारी समितियाँ किसानों को बीज, उर्वरक, सिंचाई सुविधाएँ और ऋण उपलब्ध कराने के साथ-साथ कृषि उत्पादों की खरीद-बिक्री का मंच देती हैं। इससे किसानों को बिचौलियों और साहूकारों के शोषण से राहत मिली।

सहकारी आंदोलन का सबसे बड़ा सामाजिक योगदान यह है कि इसने समानता और सहभागिता की भावना को मजबूत किया। सहकारी समितियाँ जाति, वर्ग और लिंग के भेदभाव से ऊपर उठकर लोकतांत्रिक ढंग से संचालित होती हैं। महिलाओं की सहभागिता बढ़ाने में महिला सहकारी समितियों ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है—चाहे वह स्वयं सहायता समूह (Self Help Groups) हों या दुग्ध सहकारी समितियाँ। इसने ग्रामीण महिलाओं को न केवल आर्थिक रूप से सक्षम बनाया बल्कि सामाजिक सम्मान भी दिलाया। आर्थिक दृष्टि से सहकारी समितियाँ कृषि और ग्रामीण विकास का मेरुदंड साबित हुई हैं। भारत की डेयरी सहकारिताएँ (जैसे अमूल) ने ग्रामीण स्तर पर रोजगार और आय-सृजन के अवसर बढ़ाए, जबकि सहकारी बैंक ग्रामीण क्रेडिट सिस्टम का आधार बने। शहरी क्षेत्रों में उपभोक्ता सहकारी समितियाँ महँगाई नियंत्रण और आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति सुनिश्चित करने में सहायक बनीं।

सहकारी आंदोलन ने लोकतंत्र को भी गहराई प्रदान की है। छोटे स्तर पर चुनाव और प्रबंधन में भागीदारी से लोकतांत्रिक संस्कृति विकसित हुई। किंतु चुनौतियाँ भी रहीं—जैसे राजनीतिक हस्तक्षेप, आर्थिक अनियमितताएँ और भ्रष्टाचार। बावजूद इसके, सहकारिता की सामाजिक-आर्थिक भूमिका आज भी प्रासंगिक है और यह सामूहिकता, समानता और सामाजिक न्याय की दिशा में भारत को निरंतर आगे बढ़ाती है।

वैश्वीकरण और सहकारी आंदोलन का परस्पर संबंध

वैश्वीकरण (Globalization) 1991 के बाद भारत की आर्थिक नीतियों का अभिन्न हिस्सा बना, जब उदारीकरण, निजीकरण और मुक्त बाजार व्यवस्था को अपनाया गया। इसका सीधा प्रभाव सहकारी आंदोलन पर भी पड़ा। पहले जहाँ सहकारी समितियाँ स्थानीय स्तर पर उत्पादन और वितरण तक सीमित थीं, वहीं वैश्वीकरण ने उन्हें वैश्विक प्रतिस्पर्धा, अंतरराष्ट्रीय बाजार और नई तकनीकों से जोड़ दिया।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

वैश्वीकरण के कारण सहकारी आंदोलन के सामने नए अवसर आए। उदाहरण के लिए—भारत की डेयरी सहकारिताएँ, विशेषकर अमूल, अंतरराष्ट्रीय बाजारों में प्रवेश कर वैश्विक ब्रांड बनीं। इसी प्रकार कृषि उत्पादों, हस्तशिल्प और लघु उद्योगों से जुड़ी सहकारी समितियों को निर्यात की संभावना बढ़ी। विदेशी तकनीकी सहयोग, आधुनिक प्रबंधन और वित्तीय निवेश ने सहकारी समितियों को दक्षता और पारदर्शिता अपनाने के लिए प्रेरित किया।

हालाँकि, वैश्वीकरण ने कई चुनौतियाँ भी उत्पन्न कीं। सहकारी समितियों को निजी कंपनियों और बहुराष्ट्रीय निगमों से कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा। इससे उनकी पारंपरिक कार्यप्रणाली और स्थानीय बाजार पर पकड़ कमजोर हुई। राजनीतिक हस्तक्षेप और संगठनात्मक कमजोरियों के कारण कई सहकारी संस्थाएँ वैश्विक स्तर की प्रतिस्पर्धा में टिक नहीं सकीं। साथ ही, WTO जैसी वैश्विक व्यवस्थाओं ने कृषि उत्पादों और ग्रामीण उद्योगों को अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप ढालने की अनिवार्यता उत्पन्न की, जो हर सहकारी समिति के लिए आसान नहीं था।

सामाजिक दृष्टि से वैश्वीकरण ने सहकारी आंदोलन को महिलाओं, युवाओं और वंचित वर्गों तक पहुँचाने के नए अवसर दिए। लेकिन आर्थिक उदारीकरण और निजीकरण की तेज़ी से सहकारी समितियों की स्वायत्तता पर प्रश्नचिह्न भी लगे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण और सहकारी आंदोलन का रिश्ता द्वंद्वात्मक (Dialectical) है—एक ओर यह नए अवसर और विकास के मार्ग खोलता है, तो दूसरी ओर पारंपरिक सहकारी मॉडल के अस्तित्व और उसकी मूल आत्मा के लिए चुनौती भी प्रस्तुत करता है।

भारत में सहकारी आंदोलन का विकास

भारत में सहकारी आंदोलन का विकास औपनिवेशिक काल से शुरू होकर आज वैश्विक स्तर तक विस्तृत हो चुका है। स्वतंत्रता पूर्व काल में किसानों और ग्रामीण समाज का जीवन सूदखोरी, साहूकारों के शोषण और प्राकृतिक आपदाओं के संकट से घिरा हुआ था। किसानों के पास उत्पादन के लिए पर्याप्त पूँजी नहीं थी, और जब वे साहूकारों से ऋण लेते तो ऊँचे ब्याज और बंधुआ श्रम जैसी स्थितियों का सामना करना पड़ता। ऐसे समय में 1904 का सहकारी ऋण समितियाँ अधिनियम पारित हुआ, जिसने किसानों और छोटे व्यापारियों के लिए सामूहिक सहयोग पर आधारित एक आर्थिक संरचना उपलब्ध कराई। इस अधिनियम के अंतर्गत सहकारी ऋण समितियाँ स्थापित हुईं, जहाँ सदस्य मिलकर पूँजी एकत्रित करते और ऋण सुविधा प्राप्त करते। इसके बाद 1912 का अधिनियम आया जिसने गैर-ऋण सहकारी समितियों के गठन को वैधता दी और सहकारिता का विस्तार कृषि उत्पादन, विपणन, उपभोक्ता वस्तुओं और उद्योगों तक हुआ। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान सहकारी आंदोलन केवल आर्थिक नहीं, बल्कि

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

सामाजिक और राजनीतिक चेतना का भी हिस्सा बन गया। गांधीजी ने इसे ग्राम-स्वराज की संकल्पना से जोड़ा, जहाँ सहयोग और आत्मनिर्भरता के माध्यम से ग्रामीण जीवन को सशक्त बनाने पर बल दिया गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय सरकार ने सहकारी आंदोलन को ग्रामीण पुनर्निर्माण और आर्थिक विकास का आधार बनाया। पाँच वर्षीय योजनाओं में सहकारिता को विशेष महत्व दिया गया। भूमि सुधार, हरित क्रांति और ग्रामीण बैंकिंग में सहकारी समितियों ने अहम भूमिका निभाई। विशेष रूप से 1950 और 1960 के दशक में कृषि क्षेत्र में उर्वरक, बीज, सिंचाई और विपणन सुविधाओं के लिए सहकारी समितियाँ सक्रिय रहीं। 1965 में राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड (NDDB) की स्थापना और अमूल मॉडल के विस्तार ने श्वेत क्रांति की नींव रखी, जिससे भारत विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक बना। इसी प्रकार सहकारी बैंकों और ग्रामीण क्रेडिट समितियों ने किसानों और छोटे व्यापारियों को सस्ती ऋण सुविधा उपलब्ध कराई। महाराष्ट्र में चीनी सहकारी मिलों ने न केवल आर्थिक वृद्धि को बढ़ाया, बल्कि क्षेत्रीय राजनीति और नेतृत्व निर्माण का भी माध्यम बनीं। सहकारिता ने ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार, आत्मनिर्भरता और सामाजिक समानता को बढ़ावा दिया। आज भी सहकारी समितियाँ कृषि उत्पादों के विपणन, डेयरी, उपभोक्ता वस्तुओं और आवास जैसे क्षेत्रों में कार्यरत हैं। हालाँकि, राजनीतिक हस्तक्षेप, भ्रष्टाचार, पारदर्शिता की कमी और वैश्वीकरण से उत्पन्न प्रतिस्पर्धा जैसी चुनौतियाँ इनके सामने खड़ी हैं। इसके बावजूद सहकारी आंदोलन भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था और लोकतांत्रिक ढाँचे का महत्वपूर्ण स्तंभ बना हुआ है।

साहित्य की समीक्षा

ज़ामग्री, एस. आदि (2010) के अनुसार, सहकारी उद्यम, जो समुदाय-केंद्रित और लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित हैं, वैश्वीकरण की चुनौतीपूर्ण दुनिया में अद्वितीय कठिनाइयों का सामना करते हैं। वैश्वीकरण बढ़ती प्रतिस्पर्धा लाता है, जिससे सहकारी संस्थाओं को बहुराष्ट्रीय निगमों के दबाव और तेजी से बदलते बाजारों के साथ सामंजस्य स्थापित करना पड़ता है, जबकि अपनी सामाजिक और नैतिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध रहना होता है। पारंपरिक लाभ-केंद्रित व्यवसायों के विपरीत, सहकारी संस्थाएँ सदस्यों के कल्याण और समान लाभ वितरण को प्राथमिकता देती हैं, जो अक्सर उनके लिए वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धा करने के लिए आवश्यक संचालन विस्तार और लागत-कुशलता प्राप्त करने में बाधा बन सकता है। इसके बावजूद, वैश्वीकरण सहकारी संगठनों को अंतर्राष्ट्रीय बाजारों तक पहुँच, विविध प्रतिभाओं का लाभ, और नई तकनीकों के माध्यम से नवाचार और सतत विकास के अवसर प्रदान करता है। सहकारी

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

संस्थाओं के लिए सफलता की कुंजी रणनीतिक सहयोग को अपनाने, डिजिटल उपकरणों का उपयोग करके संचालन को सरल बनाने, और अपने मूल्यों जैसे एकता और समावेशिता को मजबूत करने में निहित है। शिक्षा में निवेश और वैश्विक स्तर पर सहकारी संगठनों के बीच नेटवर्क को मजबूत करना उनके सामूहिक स्वर और लचीलेपन को बढ़ा सकता है। यदि सहकारी संस्थाएँ अपने मूल सिद्धांतों पर अडिग रहते हुए वैश्विक चुनौतियों के प्रति अनुकूल बनें, तो वे सतत और न्यायपूर्ण विकास के लिए महत्वपूर्ण मॉडल बन सकती हैं, जो आर्थिक सफलता और सामाजिक प्रभाव के बीच संतुलन बनाए रखती हैं।

गांगुली-स्क्रास, आर., आदि (2008) के अनुसार, वैश्वीकरण और नवउदारवादी सुधारों ने भारत के मध्यम वर्ग को गहराई से बदल दिया है, जिससे इसके सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्य पर गहरा प्रभाव पड़ा है। 1990 के दशक में उदारीकरण ने आर्थिक वृद्धि को प्रोत्साहित किया, उपभोक्ता बाजारों का विस्तार किया, और सामाजिक व आर्थिक उन्नति के नए रास्ते खोले, जिससे मध्यम वर्ग एक महत्वपूर्ण आर्थिक और सांस्कृतिक शक्ति के रूप में उभरा। वैश्विक ब्रांड्स, तकनीकी विकास, और मीडिया तक पहुंच ने उपभोग के पैटर्न को बदल दिया है, जिससे भौतिक सफलता और एक आधुनिक जीवनशैली की आकांक्षाएँ बढ़ी हैं। इन बदलावों ने सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को भी गहरा किया है, क्योंकि संपत्ति निर्माण का लाभ मुख्यतः शहरी अभिजात वर्ग को मिला है, जबकि ग्रामीण और निम्न-आय वर्ग के लोग हाशिए पर चले गए हैं। सांस्कृतिक रूप से, वैश्वीकरण ने मध्यम वर्ग के भीतर एक संकर पहचान को जन्म दिया है, जिसमें पारंपरिक मूल्यों और वैश्विक प्रभावों का मिश्रण देखने को मिलता है। यह बदलाव शिक्षा, लैंगिक भूमिकाओं और जीवनशैली में आधुनिकीकरण और प्रगतिशील विचारों को बढ़ावा देता है, लेकिन अक्सर विरासत को संरक्षित करने और बदलाव को अपनाने के बीच तनाव उत्पन्न करता है। बढ़ता हुआ व्यक्तिवाद और बाजार-केंद्रित प्राथमिकताओं ने सामाजिक सामंजस्य को भी प्रभावित किया है, जिससे पारिवारिक और सामुदायिक संबंधों का पुनर्परिभाषित होना देखा गया है। इस बीच, मध्यम वर्ग राष्ट्रीय आकांक्षाओं को आगे बढ़ाने, सुधारों की वकालत करने और वैश्विक अवसरों के साथ जुड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इन परिवर्तनों का संतुलन बनाने के लिए असमानताओं को दूर करना, समावेशी विकास को बढ़ावा देना, और यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि वैश्वीकरण के लाभ समाज के व्यापक वर्गों तक पहुंचे, साथ ही भारत के मध्यम वर्ग की सांस्कृतिक समृद्धि को संरक्षित किया जा सके।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

शेठ, डी. एल. (2004) के अनुसार, वैश्वीकरण ने नई राजनीति को जन्म दिया है, जिसे सूक्ष्म आंदोलनों (माइक्रो-मूवमेंट्स) के प्रसार द्वारा परिभाषित किया जाता है। ये छोटे लेकिन प्रभावशाली सामूहिक प्रयास होते हैं जो स्थानीय और अक्सर विशिष्ट मुद्दों को संबोधित करते हैं। वैश्विक संचार नेटवर्क और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स की मदद से, ये आंदोलन जमीनी स्तर के सक्रियता को बढ़ावा देते हैं, प्रमुख सत्ता संरचनाओं को चुनौती देते हैं, हाशिए पर पड़े समूहों की आवाज़ को सशक्त करते हैं, और सामाजिक, पर्यावरणीय, या राजनीतिक कारणों की वकालत करते हैं। पारंपरिक बड़े पैमाने के आंदोलनों के विपरीत, सूक्ष्म आंदोलन विकेंद्रीकृत नेतृत्व पर आधारित होते हैं और अक्सर भौगोलिक सीमाओं को पार कर जाते हैं, जो वैश्वीकरण के आपस में जुड़े हुए स्वरूप को प्रतिबिंबित करता है। यह गतिशीलता उन्हें समर्थन जुटाने, जागरूकता पैदा करने और विभिन्न स्तरों पर नीतियों को प्रभावित करने में सक्षम बनाती है। हालांकि, इनके खंडित और मुद्दा-विशेष स्वरूप के कारण, उनके लिए गति बनाए रखना या प्रणालीगत परिवर्तन के लिए व्यापक गठबंधन बनाना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। सूक्ष्म आंदोलनों की राजनीति वकालत के लोकतंत्रीकरण को भी दर्शाती है, जो उन व्यक्तियों और समुदायों को सशक्त बनाती है जो पारंपरिक राजनीतिक भागीदारी के तरीकों से बाहर रह गए थे। इन्हें कॉर्पोरेट हितों द्वारा सह-अपनाने, गलत जानकारी और डिजिटल निगरानी जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। वैश्वीकरण के युग में सूक्ष्म आंदोलनों का उदय भागीदारी और नेटवर्क आधारित सक्रियता की ओर बदलाव का संकेत देता है, जो समकालीन सामाजिक मुद्दों की जटिलताओं को संबोधित करने में अवसर और चुनौतियाँ दोनों प्रस्तुत करता है, और यह पारंपरिक राजनीतिक संरचनाओं की प्रभावशीलता पर भी सवाल खड़ा करता है।

अवसर (Opportunities)

भारत में सहकारी आंदोलन के सामने वैश्वीकरण ने अनेक अवसर प्रस्तुत किए हैं, जिनके माध्यम से यह आंदोलन केवल स्थानीय या राष्ट्रीय स्तर तक ही सीमित न रहकर अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य पर अपनी पहचान बना सकता है। सबसे बड़ा अवसर वैश्विक बाजार तक पहुँच और निर्यात की संभावना है। सहकारी समितियाँ, विशेषकर कृषि और डेयरी क्षेत्र से जुड़ी संस्थाएँ, अब अपने उत्पादों को अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप ढालकर वैश्विक उपभोक्ताओं तक पहुँचा सकती हैं। "अमूल" इसका सबसे सशक्त उदाहरण है, जिसने भारतीय डेयरी को वैश्विक ब्रांड में परिवर्तित कर दिया। इसी तरह कृषि आधारित सहकारी समितियाँ ऑर्गेनिक उत्पाद, हस्तशिल्प और लघु उद्योग वस्तुओं को निर्यात करके विदेशी मुद्रा अर्जित करने में सक्षम हो रही हैं। दूसरा महत्वपूर्ण अवसर नई तकनीकों, प्रबंधन और वित्तीय संसाधनों तक पहुँच का है। वैश्वीकरण ने सहकारी समितियों को आधुनिक तकनीकी साधन, बेहतर वित्तीय ढाँचे और

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

कुशल प्रबंधन पद्धतियों को अपनाने का मार्ग प्रशस्त किया है। इससे उत्पादकता, दक्षता और पारदर्शिता बढ़ी है। तीसरा अवसर रोजगार सृजन और उद्यमिता से जुड़ा है। सहकारी समितियाँ अब केवल पारंपरिक कृषि और ऋण गतिविधियों तक सीमित नहीं, बल्कि सेवा क्षेत्र, प्रसंस्करण उद्योग और डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म तक सक्रिय हो रही हैं। इससे युवाओं को स्वरोजगार और उद्यमिता की दिशा में प्रेरणा मिल रही है। चौथा अवसर महिलाओं और वंचित वर्गों के लिए सशक्तिकरण से संबंधित है। महिला सहकारी समितियाँ और स्वयं सहायता समूह (Self Help Groups) महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनाने के साथ सामाजिक सम्मान भी प्रदान कर रहे हैं। इसी प्रकार दलित, आदिवासी और अन्य हाशिए पर खड़े वर्ग सहकारिता के माध्यम से मुख्यधारा की अर्थव्यवस्था में शामिल हो रहे हैं। इस प्रकार अवसरों की दृष्टि से सहकारी आंदोलन वैश्विक स्तर पर अपनी सशक्त पहचान बनाने की क्षमता रखता है।

चुनौतियाँ (Challenges)

हालाँकि अवसरों के साथ-साथ सहकारी आंदोलन को गंभीर चुनौतियों का भी सामना करना पड़ रहा है। सबसे बड़ी चुनौती निजी क्षेत्र और बहुराष्ट्रीय कंपनियों से प्रतिस्पर्धा है। वैश्वीकरण के बाद बड़ी निजी कंपनियाँ और कॉरपोरेट हाउसिंग ग्रामीण बाजारों में प्रवेश कर गए, जिनके पास पूँजी, तकनीक और विपणन रणनीतियाँ अधिक मजबूत हैं। इससे सहकारी समितियों की पारंपरिक पकड़ कमजोर हुई है। दूसरी चुनौती है राजनीतिक हस्तक्षेप और भ्रष्टाचार। कई सहकारी संस्थाएँ राजनीतिक दलों और नेताओं के लिए सत्ता हासिल करने का साधन बन गईं, जिससे इनके मूल उद्देश्य—सहयोग और सामूहिकता—पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा। तीसरी चुनौती वित्तीय संसाधनों और प्रबंधन की सीमाएँ हैं। अधिकांश सहकारी समितियाँ पर्याप्त पूँजी और कुशल प्रबंधन के अभाव में आधुनिक प्रतिस्पर्धा में टिक नहीं पातीं। वे सरकारी सहायता पर निर्भर रहती हैं, जिससे स्वायत्तता भी प्रभावित होती है। चौथी और सबसे गहरी चुनौती है पारदर्शिता, जवाबदेही और संगठनात्मक लोकतंत्र का अभाव। कई सहकारी समितियों में चुनाव समय पर नहीं होते, निर्णय लेने की प्रक्रिया में सदस्य शामिल नहीं किए जाते और भ्रष्टाचार बढ़ता है। इससे न केवल जनता का विश्वास डगमगाता है बल्कि सहकारी आंदोलन की विश्वसनीयता भी प्रभावित होती है। इन चुनौतियों का समाधान किए बिना सहकारी आंदोलन वैश्विक स्तर पर टिकाऊ विकास और राजनीतिक-सामाजिक सशक्तिकरण का साधन नहीं बन सकता।

निष्कर्ष

भारत में सहकारी आंदोलन का वैश्वीकरण एक जटिल किंतु अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है, जिसने आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सभी स्तरों पर गहरा प्रभाव डाला है। प्रारंभिक दौर में सहकारिता का उद्देश्य

किसानों, मजदूरों और कमजोर वर्गों को आर्थिक सहयोग और सामाजिक न्याय दिलाना था, किंतु आज यह आंदोलन वैश्विक प्रतिस्पर्धा, बाजार आधारित नीतियों और राजनीतिक हस्तक्षेप से प्रभावित होकर नए आयाम ग्रहण कर चुका है। वैश्वीकरण ने सहकारी समितियों को वैश्विक बाजार तक पहुँच, निर्यात की संभावनाएँ, आधुनिक तकनीकी संसाधन और प्रबंधन सुधार जैसे अवसर दिए हैं, जिससे ग्रामीण विकास और आत्मनिर्भरता की नई राहें खुली हैं। महिला सहकारी समितियों और स्वयं सहायता समूहों ने सामाजिक सशक्तिकरण में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हालाँकि, इन अवसरों के साथ गंभीर चुनौतियाँ भी हैं—जैसे निजी और बहुराष्ट्रीय कंपनियों से प्रतिस्पर्धा, राजनीतिकरण, भ्रष्टाचार, पारदर्शिता और संगठनात्मक लोकतंत्र का अभाव। इन चुनौतियों ने कई सहकारी संस्थाओं की स्वायत्तता और विश्वसनीयता को कमजोर किया है। राजनीतिक दृष्टि से सहकारी आंदोलन ने ग्रामीण नेतृत्व और लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण को बढ़ावा दिया, परंतु साथ ही इसे सत्ता हासिल करने का साधन भी बना दिया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत में सहकारी आंदोलन का वैश्वीकरण द्वैध स्वरूप लिए हुए है—यह एक ओर विकास, सशक्तिकरण और वैश्विक अवसरों का मार्ग खोलता है, तो दूसरी ओर राजनीतिक हस्तक्षेप और संरचनात्मक कमजोरियों के कारण इसकी आत्मा को चुनौती भी देता है। अतः आवश्यकता है कि सहकारिता को राजनीति के अत्यधिक प्रभाव से मुक्त कर पारदर्शिता, जवाबदेही और सदस्य-आधारित लोकतंत्र को सुदृढ़ किया जाए, तभी यह वैश्विक युग में टिकाऊ और प्रभावी सिद्ध हो सकेगा।

संदर्भ

1. ज़ामग्नी, एस., और ज़ामग्नी, वी. (2010)। सहकारी उद्यम: वैश्वीकरण की चुनौती का सामना। एडवर्ड एल्गर पब्लिशिंग।
2. गांगुली-स्क्रास, आर., और स्क्रास, टी. जे. (2008)। भारत में वैश्वीकरण और मध्यम वर्ग: नवउदारवादी सुधारों का सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव। रूटलेज।
3. शेठ, डी. एल. (2004)। वैश्वीकरण और माइक्रो-मूवमेंट्स की नई राजनीति। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 45-58।
4. वाटरमैन, पी. (2001)। वैश्वीकरण, सामाजिक आंदोलन, और नया अंतरराष्ट्रीयतावाद। ए एंड सी ब्लैक।

5. मंक, आर. (2010)। वैश्वीकरण और श्रमिक आंदोलन: चुनौतियाँ और प्रतिक्रियाएँ। ग्लोबल लेबर जर्नल, 1(2)।
6. शेफर, आर. के. (2003)। वैश्वीकरण को समझना: राजनीतिक, आर्थिक, और पर्यावरणीय परिवर्तनों के सामाजिक परिणाम। रोमन एंड लिटलफील्ड।
7. रेस्टाकिस, जे. (2010)। अर्थव्यवस्था को मानवीय बनाना: पूंजी के युग में सहकारी आंदोलन। न्यू सोसाइटी पब्लिशर्स।
8. केओहान, आर. ओ., और न्ये, जे. एस. (2020)। वैश्वीकरण: नया क्या है? और क्या नहीं? (और क्यों?)। नीति निर्माण में (पृष्ठ 105-113)। रूटलेज।
9. लेवी, वाई., और डेविस, पी. (2008)। अर्थशास्त्र के 'अनफां टेरिबल' के रूप में सहकारी संस्थाएँ: सामाजिक अर्थव्यवस्था के लिए कुछ निहितार्थ। जर्नल ऑफ सोशियो-इकॉनॉमिक्स, 37(6), 2178-2188।
10. रूटलेज, पी. (2003)। एकजुटता का स्थान: जमीनी वैश्वीकरण नेटवर्क की प्रक्रियागत भूगोल। ट्रांजेक्शन्स ऑफ द इंस्टिट्यूट ऑफ ब्रिटिश जियोग्राफर्स, 28(3), 333-349।
11. मांडर, जे. (संपादक)। (2014)। वैश्विक अर्थव्यवस्था के खिलाफ मामला: स्थानीयकरण की ओर मोड़। रूटलेज।
12. किनवल, सी. (2007)। भारत में वैश्वीकरण और धार्मिक राष्ट्रवाद: ओंटोलॉजिकल सुरक्षा की खोज। रूटलेज।
13. राजगोपाल, बी. (2005)। प्रतिकूल वैश्वीकरण में कानून की भूमिका और वैश्विक कानूनी बहुलवाद: भारत में नर्मदा घाटी संघर्ष से सबक। लेइडेन जर्नल ऑफ इंटरनेशनल लॉ, 18(3), 345-387।
14. नेपल्स, एन. ए., और देसाई, एम. (संपादक)। (2004)। महिलाओं का सक्रियता और वैश्वीकरण: स्थानीय संघर्ष और वैश्विक राजनीति को जोड़ना। रूटलेज।